*Interdisciplinary Journal of Contemporary Research, Vol. 13, No. 6, June, 2026* *Impact Factor : 7.625 (IIFS)*
*(An International Peer Reviewed Multidisciplinary Refereed Research Journal)* *ISSN : 2393-8358*

# उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक परंपरा में कला एवं संगीत का अंतर्संबंध : एक अध्ययन

**डॉ. अर्चना तिवारी**
सहायक प्राध्यापक, प्रदर्शन कला विभाग, पतंजलि विश्वविद्यालय हरिद्वार, उत्तराखंड

***सारांश***

*कला और संस्कृति मानव सभ्यता के ऐसे अभिन्न आयाम हैं जिनके माध्यम से किसी समाज की विचारधारा, जीवन-पद्धति, संवेदनात्मक चेतना तथा रचनात्मक उपलब्धियों को समझा जा सकता है। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में कला का विकास केवल मनोरंजन के साधन के रूप में नहीं हुआ, बल्कि उसका संबंध धर्म, दर्शन, सामाजिक जीवन, आध्यात्मिक अनुभूति और सौंदर्यबोध से भी रहा है। उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक भूमि इस दृष्टि से अत्यंत समृद्ध रही है। यहाँ प्राचीन शैलचित्रों से लेकर लोककलाओं, शास्त्रीय परंपराओं तथा आधुनिक कला-संस्थानों तक कला के विकास की एक सुदीर्घ परंपरा दिखाई देती है।*

*प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक परंपरा के संदर्भ में कला और संगीत के पारस्परिक संबंध का अध्ययन करना है। विशेष रूप से संगीत को ललित कला के एक सूक्ष्म और प्रभावशाली माध्यम के रूप में देखते हुए उसके सांस्कृतिक, सामाजिक, सौंदर्यात्मक तथा आध्यात्मिक पक्षों का विवेचन किया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि संगीत केवल स्वर, लय और ताल की संरचना नहीं है, बल्कि यह मानव की भावनाओं, सामूहिक स्मृतियों, सांस्कृतिक मूल्यों और जीवन-दृष्टि का संवाहक है। राग, रस, गमक तथा अन्य सांगीतिक तत्व भारतीय संस्कृति की गहन संवेदनात्मक और दार्शनिक परंपरा से जुड़े हुए हैं।*

*इस अध्ययन में कला के विविध रूपों के मध्य अंतर्निहित एकता, शिष्ट एवं लोक संस्कृति के स्वरूप तथा संस्कृति के विकास में कला की भूमिका पर भी विचार किया गया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कला और संस्कृति एक-दूसरे को निरंतर प्रभावित और समृद्ध करती हैं तथा संगीत इस संबंध को स्थापित करने वाला एक अत्यंत प्रभावशाली माध्यम है।*

***मुख्य शब्द :*** *कला, संस्कृति, संगीत, उत्तर प्रदेश, सांस्कृतिक परंपरा, लोक संस्कृति, शिष्ट संस्कृति, राग, रस।*

## 1. प्रस्तावना

मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ कला और संस्कृति का विकास भी निरंतर होता रहा है। मनुष्य ने अपने अनुभवों, भावनाओं, विश्वासों और जीवन के विविध पक्षों को अभिव्यक्त करने के लिए अनेक माध्यमों का सहारा लिया। चित्र, मूर्ति, स्थापत्य, नृत्य, साहित्य और संगीत जैसी कलाएँ इसी मानवीय अभिव्यक्ति की परिणामस्वरूप विकसित हुईं। इस दृष्टि से कला केवल सौंदर्य की वस्तु नहीं, बल्कि मानव जीवन की आंतरिक चेतना को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उत्तर प्रदेश की कला-परंपरा अत्यंत प्राचीन और समृद्ध रही है। प्रदेश तथा उससे संबद्ध सांस्कृतिक भू-भागों में प्राचीन शैलचित्रों और लोककलात्मक अभिव्यक्तियों के प्रमाण प्राप्त होते हैं। मिर्जापुर क्षेत्र सहित विभिन्न स्थानों पर उपलब्ध शैलचित्र इस बात का प्रमाण हैं कि प्राचीन मानव ने अपने परिवेश, अनुभवों और जीवन-संघर्षों को चित्रों के माध्यम से व्यक्त किया।[1] इन प्रारंभिक कलात्मक अभिव्यक्तियों में मानव की रचनात्मक चेतना के साथ-साथ उसके सांस्कृतिक विकास की झलक भी दिखाई देती है।

ग्रामीण और लोकजीवन में कला का संबंध जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर से रहा है। विवाह, जन्म, धार्मिक अनुष्ठान, पर्व-त्योहार और अन्य सामाजिक अवसरों पर चित्रकला, संगीत, नृत्य तथा अन्य कलात्मक माध्यमों का प्रयोग होता रहा है। लोककलाएँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि वे समाज की सामूहिक स्मृति और सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखने का कार्य भी करती हैं।

संस्कृति को किसी निश्चित समय अथवा एक सीमित सामाजिक संरचना तक सीमित नहीं किया जा सकता। यह एक निरंतर विकसित होने वाली प्रक्रिया है। अतीत की प्रवृत्तियाँ और अनुभव वर्तमान को प्रभावित करते हैं तथा वर्तमान भविष्य की सांस्कृतिक दिशा निर्धारित करता है। इसलिए किसी भी समाज की कला-परंपरा का अध्ययन उसके ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भों से पृथक होकर नहीं किया जा सकता।

स्वतंत्रता के बाद उत्तर प्रदेश में कला के विकास को नई गति मिली। यद्यपि विभिन्न कलात्मक परंपराएँ प्रदेश में पहले से विद्यमान थीं, किंतु बनारस हिंदू विश्वविद्यालय तथा लखनऊ कला महाविद्यालय जैसी संस्थाओं से शिक्षा प्राप्त कलाकारों ने प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में कला के नए आयाम स्थापित किए। इस प्रक्रिया ने पारंपरिक कलात्मक चेतना और आधुनिक दृष्टिकोण के मध्य संवाद स्थापित करने में सहायता की।

प्रस्तुत शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक परंपरा के संदर्भ में कला और संगीत के अंतर्संबंध को समझना है। इस अध्ययन में संस्कृति की अवधारणा, ललित कलाओं में संगीत का स्थान, संगीत की सौंदर्यात्मक विशेषताएँ, लोक एवं शिष्ट संस्कृति तथा कला के मानवीय और सांस्कृतिक आयामों का विश्लेषण किया गया है।

**2. अध्ययन का उद्देश्य एवं शोध-दृष्टि**

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक परंपरा में कला और संगीत के परस्पर संबंधों का विश्लेषण करना है। अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. संस्कृति की अवधारणा एवं उसके व्यापक स्वरूप को स्पष्ट करना।
2. उत्तर प्रदेश की कला-परंपरा के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आधारों का अध्ययन करना।
3. ललित कलाओं की परिधि में संगीत के विशिष्ट स्थान का विवेचन करना।
4. संगीत और अन्य कला-विधाओं के पारस्परिक संबंधों को समझना।
5. शिष्ट एवं लोक संस्कृति के संदर्भ में संगीत और कला की भूमिका का अध्ययन करना।
6. मानवीय जीवन, सौंदर्यबोध तथा सांस्कृतिक विकास में कला की उपयोगिता का विश्लेषण करना।

**शोध-पद्धति**

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिए उपलब्ध पुस्तकों, निबंधों तथा संगीत, कला और संस्कृति से संबंधित विद्वानों के विचारों का अध्ययन कर विषय का विश्लेषण किया गया है। सामग्री का विवेचन ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा सौंदर्यात्मक दृष्टिकोण से किया गया है।

**3. संस्कृति : अर्थ एवं स्वरूप**

वर्तमान समय में 'संस्कृति' के लिए अंग्रेजी भाषा में *कल्चर* शब्द तथा 'सभ्यता' के लिए *सिविलाइजेशन* शब्द का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि दोनों शब्द मानव समाज के विकास से संबंधित हैं, किंतु इनके स्वरूप में महत्वपूर्ण अंतर है। सभ्यता का संबंध मुख्यतः मानव जीवन की बाह्य व्यवस्था, सामाजिक संगठन और भौतिक प्रगति से है, जबकि संस्कृति मानव के आंतरिक विकास, उसके विचारों, मूल्यों, विश्वासों और कलात्मक चेतना से संबंधित है।[2]

प्रसिद्ध मानवविज्ञानी डॉ. डी. एन. मजूमदार के अनुसार संस्कृति के अंतर्गत मनुष्य की रीति-नीति, विश्वास, आदर्श, कलाएँ, कौशल तथा उसके द्वारा अर्जित विभिन्न क्षमताओं को सम्मिलित किया जा सकता है।[3] इस परिभाषा से स्पष्ट है कि संस्कृति मानव जीवन की समग्र अर्जित विरासत है।

संस्कृति का स्वरूप बहुआयामी है। इसके अंतर्गत जीवन के आध्यात्मिक और लौकिक दोनों पक्ष सम्मिलित होते हैं। धार्मिक विश्वास, संस्कार, सामाजिक परंपराएँ, उत्सव, पर्व, रहन-सहन, वेशभूषा, भोजन, अलंकरण तथा कला और साहित्य सभी संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग हैं। संस्कृति किसी एक व्यक्ति की उपलब्धि नहीं है, बल्कि यह अनेक पीढ़ियों के सामूहिक अनुभवों और प्रयासों का परिणाम है।

इसी कारण संस्कृति का विकास धीरे-धीरे होता है। एक पीढ़ी द्वारा निर्मित मूल्य, परंपराएँ और कलात्मक उपलब्धियाँ अगली पीढ़ी तक पहुँचती हैं और समय के साथ उनमें परिवर्तन तथा विस्तार भी होता रहता है। इस निरंतरता में ही किसी समाज की सांस्कृतिक पहचान सुरक्षित रहती है।

**4. ललित कलाओं में संगीत का स्थान**

ललित कलाओं में वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत और काव्य का प्रमुख स्थान है। इनमें वास्तु, मूर्ति और चित्र मुख्यतः दृश्य कलाएँ हैं, जबकि संगीत और काव्य का संबंध श्रव्य अनुभव से है। यद्यपि सभी कलाओं के माध्यम भिन्न हैं, फिर भी उनका उद्देश्य मानव की संवेदनाओं को किसी न किसी रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करना है।

कला-माध्यमों की स्थूलता और सूक्ष्मता के आधार पर भी विद्वानों ने विभिन्न विचार प्रस्तुत किए हैं। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने हीगल के मत के आधार पर स्थापत्य और मूर्तिकला जैसे भौतिक माध्यमों की तुलना में संगीत को अधिक सूक्ष्म माध्यम

से संबद्ध माना है। स्थापत्य कला में ईंट, पत्थर, लोहा और अन्य भौतिक साधनों का प्रयोग होता है, जबकि संगीत का मूल आधार ध्वनि है।[4]

डॉ. चतुर्वेदी के अनुसार संगीत में ध्वनियों के विशेष संयोजन द्वारा रस की सृष्टि की जाती है, जबकि काव्य में शब्दों के माध्यम से भावों और विचारों की अभिव्यक्ति होती है।[5] संगीत की विशेषता यह है कि स्वर अपने आप में किसी निश्चित वस्तु के प्रतीक नहीं होते, फिर भी उनका विशेष संयोजन मानव मन में विविध भावनाओं का संचार कर सकता है। इसी कारण संगीत की अभिव्यक्ति को अत्यंत सूक्ष्म और प्रभावशाली माना गया है।[6]

भारतीय संगीत में राग की अवधारणा इसी भावात्मक शक्ति से जुड़ी हुई है। 'रंजयतीति रागः' के आधार पर राग का अर्थ ऐसा तत्व है जो मन को रंग देता है अथवा उसे प्रभावित करता है। भारतीय संगीत में राग केवल स्वरों का क्रम नहीं, बल्कि विशिष्ट स्वरों, भावों और अभिव्यक्ति का एक सजीव रूप है। राग की रंजकता और रसात्मकता भारतीय संगीत की सांस्कृतिक और सौंदर्यात्मक चेतना का महत्वपूर्ण आधार है।[7]

संगीत में गमक की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। पार्श्वदेव के अनुसार जब कोई स्वर अपनी श्रुति-स्थिति से विशेष प्रकार की गति ग्रहण करते हुए भावात्मक प्रभाव उत्पन्न करता है, तब उसे गमक कहा जाता है। इसे निम्न श्लोक से स्पष्ट किया गया है—

स्वश्रुतिस्थान संभ्रता छाया श्रुत्यंतराश्रयाम्।
स्वरो यद् गमयते गीते गमकोऽसौ निरूपितः॥[8]

गमक के माध्यम से स्वर में गति, गहराई और भावात्मक विस्तार उत्पन्न होता है। यह भारतीय संगीत की उस सूक्ष्म परंपरा का उदाहरण है जिसमें केवल स्वर की स्थिति ही नहीं, बल्कि उसकी गति और अभिव्यक्ति भी महत्वपूर्ण मानी जाती है।

**5. कला की अनेकता में अंतर्निहित एकता**

कला के विभिन्न रूप अपने माध्यमों और प्रस्तुति-पद्धतियों के कारण भिन्न दिखाई देते हैं, किंतु उनके मूल उद्देश्य में एक प्रकार की समानता होती है। चित्रकला रंग और रेखा के माध्यम से, साहित्य शब्दों के माध्यम से तथा संगीत ध्वनि के माध्यम से मानव अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

डॉ. रामरतन भटनागर ने कला के विविध रूपों में निहित एकता की ओर संकेत करते हुए कहा है कि कलाएँ अनेक होने के बावजूद उनका ध्येय मूलतः सौंदर्य की खोज और रसानुभूति की प्राप्ति है। विभिन्न कला-विधाओं में भिन्नता होने के बाद भी उनमें एक-दूसरे से संबंध स्थापित होने की व्यापक संभावना रहती है।[9]

संगीत में स्वर की प्रधानता है और काव्य में शब्द की, लेकिन श्रेष्ठ काव्य में संगीतात्मकता और गेयता का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसी प्रकार गीत, नृत्य और वाद्य प्राचीन भारतीय परंपरा में एक-दूसरे से संबद्ध रहे हैं। चित्रकला में रंग और रेखा प्रमुख हैं, किंतु साहित्य में शब्दों के माध्यम से दृश्यात्मक चित्र निर्मित किए जाते हैं। इस दृष्टि से कला के विभिन्न रूपों में परस्पर आदान-प्रदान की प्रक्रिया निरंतर दिखाई देती है।[10]

संगीत की परंपरा को केवल उसके व्याकरणिक पक्ष तक सीमित नहीं किया जा सकता। स्वर, सप्तक, लय, ताल, तान, सरगम, ठाट और राग जैसी संरचनाएँ संगीत की व्यवस्था के लिए आवश्यक हैं, लेकिन रचनात्मकता संगीत को जीवंत बनाए रखती है। परंपरा संगीत को आधार देती है और प्रयोग उसके विकास के लिए नवीन संभावनाएँ उत्पन्न करता है।[11]

**6. संगीत और मानवीय संवेदना**

भारतीय परंपरा में संगीत को केवल मनोरंजन के साधन के रूप में नहीं देखा गया है। इसका संबंध आध्यात्मिक साधना, धर्म, दर्शन और मानव की आंतरिक चेतना से भी रहा है। भारतीय समाज में संगीत अनेक धार्मिक और सामाजिक अवसरों का अभिन्न अंग रहा है।

संगीत की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक उसकी भावनात्मक शक्ति है। स्वर और लय के माध्यम से उत्पन्न सामंजस्य मनुष्य की मानसिक अवस्था को प्रभावित कर सकता है। संगीत आनंद, करुणा, शांति, उत्साह और अन्य अनेक भावों की अनुभूति उत्पन्न करने की क्षमता रखता है।

जयदेव सिंह द्वारा कला के संदर्भ में प्रस्तुत विचारों से यह स्पष्ट होता है कि कला मानव जीवन के विभिन्न उद्वेगों और असंगतियों को एक व्यापक शांति और समस्वरता में परिवर्तित करने की क्षमता रखती है। संगीत भी इस दृष्टि से मानव जीवन की विषमताओं के मध्य संतुलन और सामंजस्य की अनुभूति उत्पन्न करता है।[12]

जब विभिन्न स्वर एक निश्चित अनुपात और व्यवस्था में संगठित होते हैं, तो वे केवल ध्वनियों का समूह नहीं रहते, बल्कि एक विशिष्ट भाव-जगत की रचना करते हैं। इसी प्रकार संगीत की संरचना में निहित सामंजस्य सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में समन्वय की अवधारणा को भी प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त करता है।

ए. एन. वाइटहेड ने प्रगति के संदर्भ में परिवर्तन और व्यवस्था की पारस्परिकता को महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार वास्तविक प्रगति के लिए परिवर्तन के भीतर व्यवस्था तथा व्यवस्था के भीतर परिवर्तन की संभावना बनी रहनी चाहिए।[13] यह विचार कला और संगीत के विकास के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक है। परंपरा और नवीनता के बीच संतुलन ही किसी कला को जीवंत और गतिशील बनाए रखता है।

**7. संस्कृति की परिधि में कला**

मानव सक्रियता के विभिन्न रूपों में आध्यात्मिक, व्यावहारिक, रचनात्मक और अन्य बौद्धिक प्रवृत्तियाँ सम्मिलित होती हैं। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार किसी भी युग की मानवीय सक्रियता के पीछे विभिन्न अंतर्द्वंद्व और विचारगत प्रवृत्तियाँ कार्य करती हैं। कला इन्हीं मानवीय स्थितियों को स्वर, शब्द, रंग, रेखा, अभिनय और अन्य माध्यमों द्वारा अभिव्यक्ति देती है।[14]

कला मनुष्य के अनुभवों और उसके परिवेश के बीच से विकसित होती है। इसी कारण प्रत्येक युग की कला उस युग की सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक स्थितियों का परिचय देती है। कला केवल बाह्य संसार का चित्रण नहीं करती, बल्कि वह मानव की आंतरिक अनुभूतियों को भी रूप प्रदान करती है।

संस्कृति को व्यापक रूप से शिष्ट संस्कृति और लोक संस्कृति के रूप में भी समझा जा सकता है। शिष्ट संस्कृति सामान्यतः शास्त्रीय, साहित्यिक और स्थापित सांस्कृतिक परंपराओं से संबंधित होती है, जबकि लोक संस्कृति का आधार जनसामान्य का जीवन, उसके स्थानीय विश्वास और सामूहिक अनुभव होते हैं।

उदाहरण के रूप में वेदों और पुराणों में वर्णित देवताओं की उपासना को शिष्ट सांस्कृतिक परंपरा से संबंधित माना जा सकता है, जबकि स्थानीय देवताओं, ग्रामदेवताओं तथा विभिन्न लोकविश्वासों से जुड़ी उपासना पद्धतियाँ लोक संस्कृति के अंतर्गत आती हैं।[15]

लोक संस्कृति और शिष्ट संस्कृति दोनों ही किसी समाज की सांस्कृतिक संरचना को समृद्ध बनाती हैं। लोकसंगीत जनजीवन की सहज अनुभूतियों, श्रम, उत्सव, प्रेम, विरह और सामाजिक अनुभवों को अभिव्यक्त करता है। दूसरी ओर शास्त्रीय संगीत दीर्घकालीन साधना, सिद्धांत और सौंदर्यात्मक अनुशासन की परंपरा को आगे बढ़ाता है। दोनों के मध्य विरोध की अपेक्षा एक प्रकार का सांस्कृतिक संबंध देखा जा सकता है।

**8. सभ्यता, संस्कृति और मानवीय विकास**

संस्कृति मानव जीवन के आंतरिक सौंदर्य और उसकी मूल्यपरक चेतना से संबंधित है। सभ्यता और संस्कृति दोनों मानव विकास के महत्वपूर्ण पक्ष हैं, किंतु उनके कार्यक्षेत्र अलग-अलग हैं। सभ्यता जीवन की बाह्य सुविधाओं और व्यवस्थाओं को विकसित करती है, जबकि संस्कृति मनुष्य के विचारों, मूल्यों और आंतरिक संवेदनाओं को परिष्कृत करती है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सभ्यता को बाह्य प्रयोजनों की सहज व्यवस्था तथा संस्कृति को मनुष्य के उच्चतर आनंद की अभिव्यक्ति के रूप में देखा है।[16] यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि संस्कृति का संबंध केवल उपयोगिता से नहीं, बल्कि जीवन की गुणवत्ता और उसके सौंदर्यात्मक तथा मूल्यपरक विकास से भी है।

धर्म, दर्शन, साहित्य, संगीत और कला के माध्यम से मनुष्य ने अपनी चेतना का निरंतर विस्तार किया है। साथ ही सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने के लिए विभिन्न संस्थाओं और परंपराओं का विकास किया है। इन सभी तत्वों का सम्मिलित स्वरूप ही संस्कृति का निर्माण करता है।

मानव संस्कृति का विकास सामूहिक प्रयासों का परिणाम है। अनेक पीढ़ियों के अनुभव, संघर्ष, प्रयोग और रचनात्मक उपलब्धियाँ मिलकर सांस्कृतिक विरासत का निर्माण करती हैं। यही सांस्कृतिक विरासत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती रहती है।

**9. कला के प्रमुख आयाम**

कला के स्वरूप और उसके मानवीय महत्व को समझने के लिए उसके कुछ प्रमुख आयामों पर विचार किया जा सकता है—

1. सांस्कृतिक विकास से संबंध
2. मूर्त जगत और प्रकृति से साहचर्य
3. आनंदानुभूति का सृजन एवं संप्रेषण
4. मानवीय जीवन के साथ अटूट संबंध

कला का प्रथम आयाम उसके सांस्कृतिक स्वरूप से संबंधित है। प्रत्येक कला अपने समय और समाज की सांस्कृतिक चेतना से प्रभावित होती है। दूसरा आयाम प्रकृति और बाह्य जगत से उसके संबंध को व्यक्त करता है। प्रकृति मानव की कलात्मक चेतना का प्राचीनतम स्रोत रही है।

तीसरा आयाम आनंदानुभूति का है। कला का उद्देश्य केवल किसी तथ्य या विचार को प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि उसके माध्यम से भावात्मक अनुभव उत्पन्न करना भी है। संगीत सुनते समय उत्पन्न होने वाला आनंद, चित्र को देखकर मिलने वाली अनुभूति अथवा कविता के माध्यम से प्राप्त होने वाली भावावस्था इसी कला-अनुभूति का परिणाम है।

चौथा आयाम कला और मानव जीवन के बीच के अटूट संबंध को व्यक्त करता है। कला जीवन से अलग कोई स्वतंत्र और निर्जीव क्षेत्र नहीं है। वह जीवन के अनुभवों से ही जन्म लेती है और पुनः जीवन को प्रभावित करती है।

भारतीय चिंतन में 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' की अवधारणा कला और जीवन के इसी उच्चतर संबंध को अभिव्यक्त करती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार कला में यदि उदात्तता का विकास होता है तो वह मानव जीवन को भी अधिक उदात्त बनाने की क्षमता रखती है।[7]

कला की रचना और उसके आस्वादन की प्रक्रिया भी महत्वपूर्ण है। कलाकार अपने अनुभव, संवेदना और संस्कारों के आधार पर कला का सृजन करता है, जबकि दर्शक अथवा श्रोता अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और भावात्मक क्षमता के अनुसार उसका अनुभव करता है। इस अर्थ में कला एक भावात्मक प्रक्रिया है, जिसमें रचनाकार और आस्वादक दोनों की सक्रिय भूमिका होती है।[8]

कला का वास्तविक उद्देश्य जीवन से पलायन नहीं, बल्कि जीवन को अधिक गहराई से समझना और अनुभव करना है। कला जीवन की विषमताओं और संघर्षों से दूर भागने के बजाय उन्हें एक नए सौंदर्यात्मक रूप में प्रस्तुत करती है। आदर्श की कल्पना करते हुए भी कला अंततः मानव जीवन की ओर ही लौटती है और उसे अधिक संवेदनशील तथा उदात्त बनाने का प्रयास करती है।[9]

**10. निष्कर्ष**

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कला और संस्कृति के बीच अत्यंत गहरा और अविभाज्य संबंध है। संस्कृति किसी समाज की सामूहिक चेतना, अनुभवों, मूल्यों और जीवन-पद्धतियों का प्रतिनिधित्व करती है, जबकि कला इन तत्वों को सौंदर्यपूर्ण और संवेदनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करती है। इस प्रकार कला संस्कृति की अभिव्यक्ति भी है और उसके संरक्षण तथा विकास का महत्वपूर्ण माध्यम भी।

उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक परंपरा में कला के विकास की एक दीर्घ और समृद्ध परंपरा दिखाई देती है। प्राचीन शैलचित्रों से लेकर लोककलाओं और आधुनिक कला-संस्थानों तक इस विकास की निरंतरता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। स्वतंत्रता के पश्चात कला-शिक्षा और विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से प्रदेश में कला को नवीन दिशा प्राप्त हुई, जिसके परिणामस्वरूप पारंपरिक और आधुनिक दृष्टियों के बीच एक रचनात्मक संबंध विकसित हुआ।

संगीत कला इस सांस्कृतिक परंपरा का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है। संगीत की शक्ति केवल उसकी तकनीकी संरचना में नहीं, बल्कि उसकी भावात्मक और संवेदनात्मक क्षमता में निहित है। राग, रस, गमक, स्वर और लय जैसे तत्व भारतीय संगीत को विशिष्ट सांस्कृतिक आधार प्रदान करते हैं। संगीत मानव की आंतरिक भावनाओं को व्यक्त करने के साथ-साथ सामाजिक और सांस्कृतिक अनुभवों को भी संरक्षित करता है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि विभिन्न कला-विधाएँ अपने माध्यमों में भिन्न होते हुए भी मूलतः एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। संगीत, काव्य, नृत्य, चित्रकला और अन्य कलाओं के मध्य परस्पर संबंध और प्रभाव की प्रक्रिया निरंतर दिखाई देती है। इन सभी कलाओं का प्रमुख उद्देश्य किसी न किसी रूप में सौंदर्यबोध और रसानुभूति की सृष्टि करना है।

लोक संस्कृति और शिष्ट संस्कृति भी भारतीय सांस्कृतिक संरचना के दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं। लोकसंगीत और लोककलाएँ जनसामान्य की जीवनानुभूतियों और परंपराओं को सुरक्षित रखती हैं, जबकि शास्त्रीय कलाएँ दीर्घकालीन साधना और सुसंगठित कलात्मक ज्ञान की परंपरा का प्रतिनिधित्व करती हैं। दोनों मिलकर सांस्कृतिक जीवन को व्यापकता प्रदान करते हैं।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक परंपरा में कला और संगीत केवल मनोरंजन अथवा सौंदर्य के साधन नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक स्मृति, सांस्कृतिक पहचान, मानवीय संवेदना और आध्यात्मिक चेतना के महत्वपूर्ण वाहक हैं। परंपरा और परिवर्तन के बीच संतुलन बनाए रखते हुए कला और संगीत निरंतर समाज को समृद्ध करते रहे हैं और भविष्य में भी सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया में उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण बनी रहेगी।

**सन्दर्भ :**

1. उत्तर प्रदेश 2016, पृ. 186
2. भोजपुरी लोक संस्कृति, डॉ. कृष्ण देव, प्रस्तावना से प्राप्त
3. एन इनट्रोडक्शन टू सोशल एन्थ्रोपोलाजी, डॉ. डी. एन. मजुमदार तथा टी. एन. मदन, पृ. 14
4. भारतीय संगीत का समाजशास्त्रीय संदर्भ, राजेन्द्रपुर
5. साहित्य कोश, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 68
6. वही पुस्तक एवं पृ. संख्या
7. इवाल्यशन ऑफ इन्डियन म्यूजिक, सुमति मुतातकर का आलेख, पृ. 33
8. इंटरनल पॉराडाक्स इन इंडियन म्यूजिक, जी.एच. रानाडे, पृ. 42
9. भारतीय सेगीत का समाजशास्त्रीय सन्दर्भ, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पैराग्राफ 2, पृ. 66
10. वही पुस्तक एवं पृष्ठ संख्या
11. इन ऑनर ऑफ कजिक, बीच ग्रेव बुक्स, शिवराम ठाकरे, पृ. 423
12. द क्रांसेप्ट ऑफ रस, जयदेव सिंह, पृ. 63, 64
13. प्रोसेस एंड रियलिटी, एन. ए. वाइटहेड, पृ. 10
14. द फिलॉसफी ऑफ आर्ट्स, डॉ. राधाकृष्णन सर्वपल्ली, पृ. 12, 'अन्विति'-3 (बंबई में) प्रकाशित अनुवाद, मार्च 1971
15. भोजपुरी लोक संस्कृत, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 02
16. अशोक के फूल, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 81
17. 'सत्यं शिवं सुन्दरम' निबंध, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, ब्रह्मवाणी विशेषांक (61), पृ. 13
18. कला का जन्म और उद्देश्य (निबंध), राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. 12, 'कल्पना', जनवरी 1956
19. भारतीय संगीत का समाजशास्त्रीय सन्दर्भ, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. 78